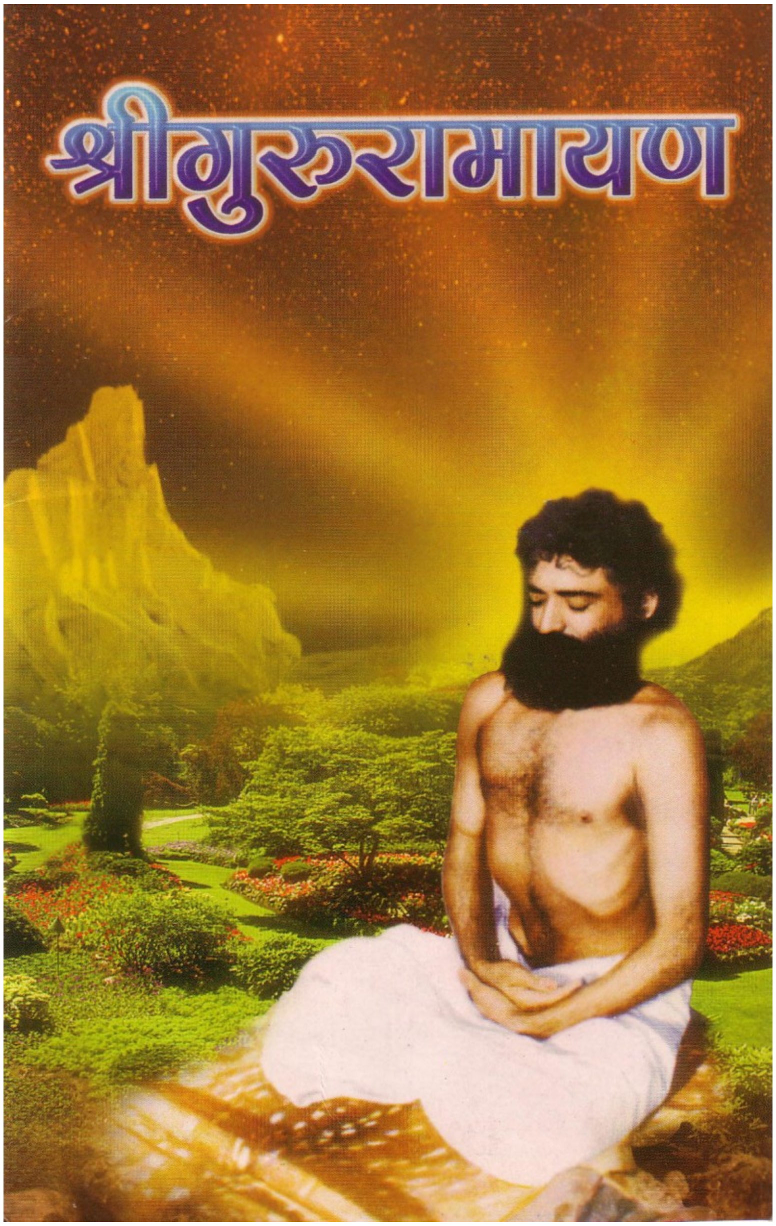

श्री गुरु रामायण

श्लोक एवं अनुवाद

अनुक्रम

अथ प्रथमो सर्गः.. 2
अथ द्वितियो सर्गः.. 8
अथ तृतियो सर्गः.. 14

अथ चतुर्थो सर्गः.. 19
मोक्षधामः 26
अथ पंचमो सर्गः.. 28
श्रीगुरुवन्दना 35

।। श्री गणेशाय नमः ।।

श्री गुरु रामायण

अथ प्रथमो सर्गः

गिरिजानन्दनं देवं गणेशं गणनायकम्।
सिद्धिबुद्धिप्रदातारं प्रणमामि पुनः पुनः।।1।।

सिद्धि बुद्धि के प्रदाता, पार्वतीनन्दन, गणनायक श्री गणेश जी को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।(1)

वन्दे सरस्वतीं देवीं वीणापुस्तकधारिणीम्।
गुरुं विद्याप्रदातारं सादरं प्रणमाम्यहम्।।2।।

वीणा एवं पुस्तक धारण करने वाली सरस्वती देवी को मैं नमस्कार करता हूँ। विद्या प्रदान करने वाले पूज्य गुरुदेव को मैं सादर प्रणाम करता हूँ।(2)

चरितं योगिराजस्य वर्णयामि निजेच्छया।
महतां जन्मगाथाऽपि भवति तापनाशिनी।।3।।

मैं स्वेच्छा से योगीराज (पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू) के पावन चरित का वर्णन कर रहा हूँ। महान् पुरुषों की जन्मगाथा भी भवताप को नाश करने वाली होती है।(3)

भारतेऽजायत कोऽपि योगविद्याविचक्षणः।
ब्रह्मविद्यासु धौरेयो धर्मशास्त्रविशारदः।।4।।

योगविद्या में विचक्षण, धर्मशास्त्रों में विशारद एवं ब्रह्मविद्या में अग्रगण्य कोई (महान संत) भारतभूमि में अवतरित हुआ है। (4)

अस्मतकृते महायोगी प्रेषितः परमात्मना।
गीतायां भणितं तदात्मानं सृजाम्यहम्।।5।।

परमात्मा ने हमारे लिये ये महान् योगी भेजे हैं। (भगवान श्री कृष्ण ने) गीता में कहा ही है कि (जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब) मैं अपने रूप को रचता हूँ। (अर्थात् साकार रूप में लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ।)(5)

जायते तु यदा संतः सुभिक्षं जायते ध्रुवम्।

काले वर्षति पर्जन्यो धनधान्ययुता मही।।6।।

जब संत पृथ्वी पर जन्म लेते हैं तब निश्चय ही पृथ्वी पर सुभिक्ष होता है। समय पर बादल वर्षा करते हैं और पृथ्वी धनधान्य से युक्त हो जाती है।(6)

नदीषु निर्मलं नीरं वहति परितः स्वयम्।
मुदिता मानवाः सर्वे तथैव मृगपक्षिणः।।7।।

नदियों में निर्मल जल स्वयं ही सब ओर बहने लग जाता है। मनुष्य सब प्रसन्न होते हैं और इसी प्रकार मृग एवं पशु-पक्षी आदि जीव भी सब प्रसन्न रहते हैं।(7)

भवन्ति फलदा वृक्षा जन्मकाले महात्मनाम्।
इत्थं प्रतीयते लोके कलौ त्रेता समागतः।।8।।

महान् आत्माओं के जन्म के समय वृक्ष फल देने लग जाते हैं। संसार में ऐसा प्रतीत होता है मानों कलियुग में त्रेतायुग आ गया हो।(8)

ब्रह्मविद्याप्रचाराय सर्वभूताहिताय च।
आसुमलकथां दिव्यां साम्प्रतं वर्णयाम्यहम्।।9।।

अब मैं ब्रह्मविद्या के प्रचार के लिए और सब प्राणियों के हित के लिए आसुमल की दिव्य कथा का वर्णन कर रहा हूँ।(9)

अखण्डे भारते वर्षे नवाबशाहमण्डले।
सिन्धुप्रान्ते वसति स्म बेराणीपुटमेदने।।10।।
थाऊमलेति विख्यातः कुशलो निजकर्मणि।
सत्यसनातने निष्ठो वैश्यवंशविभूषणः।।11।।

अखण्ड भारत में सिन्ध प्रान्त के नवाबशाह नामक जिले में बेराणी नाम नगर में अपने कर्म में कुशल, सत्य सनातन धर्म में निष्ठ, वैश्य वंश के भूषणरूप थाऊमल नाम के विख्यात सेठ रहते थे।(10, 11)

धर्मधारिषु धौरेयो धेनुब्राह्मणरक्षकः।
सत्यवक्ता विशुद्धात्मा पुरश्रेष्ठीति विश्रुतः।।12।।

वे धर्मात्माओं में अग्रगण्य, गौब्राह्मणों के रक्षक, सत्य भाषी, विशुद्ध आत्मा, नगरसेठ के रूप में जाने जाते थे। (12)

भार्या तस्य कुशलगृहिणी कुलधर्मानुसारिणी।
पतिपरायणा नारी महंगीबेति विश्रुता।।13।।

उनकी धर्मपत्नी का नाम महँगीबा था, जो कुशल गृहिणी एवं अपने कुल के धर्म का पालन करने वाली पतिव्रता नारी थी। (13)

तस्या गर्भात्समुत्पन्नो योगी योगविदां वरः।
वसुनिधि निधीशाब्दे चैत्रमासेऽसिते दले।

षष्ठीतिथौ रविवारे आसुमलो ह्यवातरत्।।14।।

विक्रम संवत 1998 चैत वदी छठ रविवार को माता महँगीबा के गर्भ से योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ योगी आसुमल का जन्म हुआ।(14)

विलोक्य चक्षुषा बालं गौरवर्णं मनोहरम्।
नितरां मुमुदे दृढाङ्गं कुलदीपकम्।।15।।

हृष्टपुष्ट कुलदीपक, गौरवर्ण सुन्दर बालक को अपनी आँखों से देखकर माता (महँगीबा) बहुत प्रसन्न हुईं।(15)

पुत्रो जात इति श्रुत्वा पितापि मुमुदेतराम्।
श्रुत्वा सम्बन्धिनः सर्वे वर्धतां कथयन्ति तम्।।16।।

(घर में) पुत्र पैदा हुआ है यह सुनकर पिता थाऊमल भी बहुत प्रसन्न हुए। श्रेष्ठी के घर पुत्ररत्न की प्राप्ति सुनकर सब सम्बन्धी लोग भी उन्हें बधाइयाँ दे रहे थे।(16)

भूसुरा दानमानाभ्यां तृणदानेन धेनवः।
भिक्षुका अन्नदानेन स्वजना मोदकादिभिः ।।17।।
एवं संतोषिताः सर्वे पित्रा ग्रामनिवासिनः।
पुत्ररत्नस्य संप्राप्तिः सदैवानन्ददायिनी।।18।।

पिता ने ब्राह्मणों को दान और सम्मान के द्वारा, गौओं को तृणदान के द्वारा, दरिद्रनारायणों को अन्नदान के द्वारा और स्वजनों को लड्डू आदि मिठाई के द्वारा.... इस प्रकार सभी ग्रामनिवासियों को संतुष्ट किया क्योंकि पुत्ररत्न की प्राप्ति सदा ही आनन्ददायक होती है। (17, 18)

अशुभं जन्म बालस्य कथयन्ति परस्परम्।
नरा नार्यश्च रथ्यायां तिस्रःकन्यास्ततः सुतः।।19।।
अनेनाशुभयोगेन धनहानिर्भविष्यति।
अतो यज्ञादि कर्माणि पित्रा कार्याणि तत्त्वतः।।20।।

गली में कुछ स्त्री-पुरुष बालक के जन्म पर चर्चा कर रहे थे किः "तीन कन्याओं के बाद पुत्ररत्न की प्राप्ति अशुभ है। इस अशुभ योग से धनहानि होगी, इसलिये को यज्ञ आदि विशेष कार्य करने चाहिये।"(19, 20)

दोलां दातुं समायातो नरः कश्चिद् विलक्षणः।
श्रेष्ठिन् ! तव गृहे जातो नूनं कोऽपि नरोत्तमः।।21।।
इदं स्वप्ने मया दृष्टमतो दोलां गृहाण मे।
समाहूतस्तदा तेन पूज्यः कुलपुरोहितः।।22।।

(उसी समय) कोई व्यक्ति एक हिंडोला (झूला) देने के लिए आया और कहने लगाः "सेठजी ! आपके घर में सचमुच कोई नरश्रेष्ठ पैदा हुआ है। यह सब मैंने स्वप्न में देखा है, अतः आप

मेरे इस झूले को ग्रहण करें।" इसके बाद सेठजी ने अपने पूजनीय कुलपुरोहित को (अपने गर) बुलवाया। (21, 22)

विलोक्य सोऽपि पंचांगमाश्चर्यचकितोऽभवत्।
अहो योगी समायातः कश्चिद्योगविदां वरः।।23।।
तारयिष्यति यो लोकान्भवसिन्धुनिमज्जितान्।
एवं विधा नरा लोके समायान्ति युगान्तरे।।24।।
जायन्ते श्रीमतां गेहे योगयुक्तास्तपस्विनः।
भवति कृपया तेषामृद्धिसिद्धियुतं गृहम्।।25।।
तव पुत्रप्रतापेन व्यापारो भवतः स्वयम्।
स्वल्पेनैव कालेन द्विगुणितं भविष्यति।।26।।

पंचांग में बच्चे के दिनमान देखकर पुरोहित भी आश्चर्यचकित हो गया और बोलाः "सेठ साहिब ! योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ यह कोई योगी आपके घर में अवतरित हुआ है। यह भवसागर में डूबते हुए लोगों को भव से पार करेगा। ऐसे लोग संसार में युगों के बाद आया करते हैं। धनिक व्यक्तियों के घर में ऐसे योगयुक्त तपस्वी जन जन्म धारण किया करते हैं और उनकी कृपा से घर ऋद्धि-सिद्धि से परिपूर्ण हो जाया करता है। श्रीमन् ! आपके इस पुत्र के प्रभाव से आपका व्यापार अपने आप चलने लगेगा और थोड़े ही समय में वह दुगुना हो जायेगा। (23, 24, 25, 26)

नामकरणसंस्कारः तातेन कारितस्तदा।
भिक्षुकेभ्यः प्रदत्तानि मोदकानि तथा गुडम्।।27।।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्तं वस्त्राणि विविधानि च।
दानेन वर्धते लक्ष्मीसयुर्विद्यायशोबलम्।।28।।

तब पिता ने पुत्र का नामकरण संस्कार करवाया और दरिद्रनारायणों को लड्डू और गुड़ बाँटा गया। ब्राह्मणों को धन, वस्त्र आदि दिये गये क्योंकि दान से लक्ष्मी, आयु, विद्या, यश और बल बढ़ता है। (27, 28)

दुर्दैवेन समायातं भारतस्य विभाजनम्।
तदेमे गुर्जरे प्रान्ते समायाताः सबान्धवा।।29।।

दुर्दैव से भारतो का विभाजन हो गया। तब ये सब लोग बन्धु-बान्धवोंसहित गुजरात प्रान्त में आ गये। (29)

तत्राप्यमदावादमावासं कृतवान्नवम्।
नूतनं नगरमासीत्तथाऽपरिचिता नराः।।30।।

भारत में भी अमदावाद में आकर इन्होंने नवीन आवास निश्चित किया जहाँ नया नगर था और सब लोग अपरिचित थे।(30)

धन धान्यं धरां ग्रामं मित्राणि विविधानि च।

थाऊमल समायातस्तयक्त्वा जन्मवसुन्धराम्।ß1।।

धन,धान्य, भूमि, गाँव और सब प्रकार के मित्रों को एवं अपनी जन्मभूमि को छोड़कर सेठ थाऊमल (भारत के गुजरात प्रान्त मे) आ गये।(31)

विभाजनस्य दुःखानि रक्तपातः कृतानि च।

भुक्तभोगी विजानाति नान्य कोऽप्यपरो नरः।ß2।।

भारत विभाजन के समय रक्तपात एवं अनेक दुःखों को कोई भुक्तभोगी (भोगनेवाला) ही जानता हूँ, दूसरा कोई व्यक्ति नहीं जानता।(32)

स्वर्गाद् वृथैव निर्दोषाः पातिता नरके नराः।

अहो मायापतेर्मायां नैव जानाति मानवः।ß3।।

(दैव ने) निर्दोष लोगों को मानो अकारण स्वर्ग से नरक में डाल दिया। आश्चर्य है कि मायापति की माया को कोई मनुष्य नहीं जान सकता।(33)

पित्रा सार्धं नवावासे आसुमलः समागतः।

प्रसन्नवदनो बालः परं तोषम्गात्तदा।।34।।

पिता जी के साथ बालक आसुमल नये निवास में आये। (वहाँ) प्रसन्न वदनवाला (वह) बालक परम संतोष को प्राप्त हुआ। (34)

धरायां द्वारिकाधीशः स्वयमत्र विराजते।

अधुना पूर्वपुण्यानां नूनं जातः समुदभवः।ß5।।

(बालक मन में सोच रहा था कि) 'इस धरती पर यहाँ (गुजरात मे) द्वारिकाधीश स्वयं विराजमान है। आज वास्तव में पूर्वजन्म में कृत पुण्यों का उदय हो गया है।' (35)

प्रेषितः स तदा पित्रा पठनार्थं निजेच्छया।

पूर्वसंस्कारयोगेन सद्योजातः स साक्षरः।ß6।।

पिता जी ने स्वेच्छा से बालक को पढ़ने के लिये भेजा। अपने पूर्व संस्कारों के योग से (वह बालक आसुमल) कुछ ही समय में साक्षर हो गया।(36)

अपूर्वा विलक्षणा बुद्धिरासीत्तस्य विशेषतः।

अत एव स छात्रेषु शीघ्र सर्वप्रियोऽभवत्।ß7।।

उसकी (बालक आसुमल की) बुद्धि अपूर्व और विलक्षण थी। अतः वह शीघ्र की छात्रों में विशेषतः सर्वप्रिय हो गया।(37)

निशायां स करोति स्म पितृचरणसेवनम्।

पितापि पूर्णसंतुष्टो ददाति स्म शुभाशिषम्।ß8।।

रात्रि के समय वे (बालक आसुमल) अपने पिताजी की चरणसेवा किया करते थे और पूर्ण संतुष्ट हुए पिताजी भी (आसुमल को) शुभाआशीर्वाद दिया करते थे।(38)

धर्मकर्मरता माता लालयति सदा सुतम्।

कथां रामायणादीनां श्रावयति सुतवत्सला।।39।।

धार्मिक कार्यों में रत सुतवत्सला माता पुत्र (आसुमल) से असीम स्नेह रखती थीं एवं सदैव रामायण आदि की कथा सुनाया करती थीं।(39)

माता धार्मिकसंस्कारैः संस्कारोति सदा सुतम्।

ध्यानास्थितस्य बालस्य निदधाति पुर स्वयम्।।40।।

नवनीतं तदा बालं वदति स्म स्वभावतः।

यशोदानन्दनेदं नवनीतं प्रेषितमहो।।41।।

माता अपने धार्मिक संस्कारों से सदैव पुत्र (आसुमल) को सुसंस्कृत करती रहती थीं। वह ध्यान में स्थित बालक के आगे स्वयं मक्खन रख दिया करती थीं। फिर माता बालक को स्वाभाविक ही कहा करती थी किः "आश्चर्य की बात है कि भगवान यशोदानंदन ने तुम्हारे लिये यह मक्खन भेजा है।"(40, 41)

कर्मयोगस्य संस्कारो वटवृक्षायतेऽधुना।

सर्वैर्भक्तजनैस्तेन सदाऽऽनन्दोऽनुभूयते।।42।।

(माता के द्वारा सिंचित वे) धार्मिक संस्कार अब वटवृक्ष का रूप धारण कर रहे हैं। आज सब भक्तजन उन धार्मिक संस्कारों से ही आनन्द का अनुभव कर रहे हैं।(42)

स च मातृप्रभावेण जनकस्य शुभाशिषा।

आसुमलोऽभवत् पूज्यो ब्रह्मविद्याविशारदः।।43।।

माता के प्रभाव से एवं पिताजी के शुभाशीर्वाद से वे आसुमल ब्रह्मविद्या में निष्णात एवं पूजनीय बन गये।(43)

अनेका पठिता भाषा संस्कृतं तु विशेषतः।

यतो वेदादि शास्त्राणि सन्ति सर्वाणि संस्कृते।।44।।

(आसुमल ने) अनेक भाषाएँ पढ़ीं किन्तु संस्कृत भाषा पर विशेष ध्यान दिया, क्योंकि वेद आदि सभी शास्त्र संस्कृत में ही हैं। (44)

विद्या स्मृतिपथं याता पठिता पूर्वजन्मनि।

सत्यः सनातनो जीवः संसारः क्षणभंगुरः।।45।।

(इस प्रकार) पूर्व जन्म में पढ़ी हुई समस्त विद्याएँ स्मरण हो आईं की यह जीव सत्य सनातन है और संसार क्षणभंगुर एवं अनित्य है।(45)

थाऊमलो महाप्रज्ञो वणिज्कर्म समाचरत्।

ज्येष्ठपुत्रस्तदा तस्य विदधाति सहायताम्।।46।।

महाबुद्धिमान सेठ थाऊमल व्यापार कार्य करते थे। उस समय उनका ज्येष्ठ पुत्र (व्यापार में) उनकी सहायता करता था।(46)

व्यापारे वर्धते लक्ष्मीः कथयन्ति मनीषिणः।

परिवारस्तदा तेषामेवं प्रतिष्ठितोऽभवत्।।47।।

बुद्धिमान लोग कहते हैं कि व्यापार में लक्ष्मी बढ़ती है। इस प्रकार उनका परिवार तब (पुनः) प्रतिष्ठित हो गया। (47)

मानवचिन्तितं व्यर्थं जायते प्रभुचिन्तितम्।

कालकवलितो जातः सहसा स महाजनः।।48।।

मनुष्य जो सोचता है वह नहीं होता, किन्तु होता वही है जिसे भगवान सोचते हैं। उस समय अचानक ही सेठ थाऊमलजी का देहान्त हो गया।(48)

माता रोदितुमारेभे परिवारस्तथैव च।

परमासुमलस्तेभ्यो धैर्यं ददाति यत्नतः।।49।।

(पति की मृत्यु देखकर) माता और सारा परिवार रूदन करने लगा, किन्तु आसुमल प्रयत्नपूर्वक उन सबको धीरज बँधा रहे थे।(49)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अथ द्वितियो सर्गः

एष नश्वर संसारः सदा जीवो न जीवति।

क्व गताः पितरः सर्वे मम पितामहादयः।।50।।

(आसुमल ने अपने परिवारजनों से कहाः) "यह संसार नश्वर है। यहाँ कोई जीव सदा जीवित नहीं रहता। मुझे बताइये कि मेरे दादा आदि सब पितृ कहाँ चले गये?" (50)

कृताऽन्तिमक्रिया सर्वा पिण्डदानादिकं तथा।

सनातनविधानेन सर्वं कार्यं स्वयं कृतम्।।51।।

(आसुमल) ने अपने पिताजी की) अन्तिम क्रिया की और पिण्डदान आदि सर्व कार्य सनातन रीति के अनुसार सम्पन्न किये।(51)

ज्येष्ठभ्रात्रा सह सर्वं व्यापारमीक्षते स्वयम्।

क्षुधार्तेभ्यः परमन्नं विनामूल्यं अदाययत्।।52।।

अब आसुमल अपने बड़े भाई के साथ सब व्यापार पर स्वयं निगरानी रखते थे, किन्तु वे (अपनी पूजा-पाठ आदि के कारण दया भाव से) क्षुधापीड़ित लोगों को अन्न बिना मूल्य ही दिला दिया करते थे।(52)

अथवा स समाधिस्थो जपादि निज कर्मणि।

कालो यापयति नित्यं चिराय तत्र गच्छति।।53।।

अथवा अपने जप आदि कार्यों में समाधिस्थ होकर समय व्यतीत करते थे और वहाँ (दुकान पर) देर से जाया करते थे।(53)

कुपितेन तदा भ्रात्रा मातुरग्रे निवेदितम्।
साकमनेन भो मातः ! मह्यं कार्यं न रोचते।।54।।

इससे कुपित होकर बड़े भ्राता ने माता से निवेदन किया किः "माताजी ! इसके (आसुमल के) साथ कार्य करना मुझे पसन्द नहीं है।"(54)

सिद्धपुरं तदाऽऽयात आसुमलो महामतिः।
तत्र किंचिद् निजं कार्यं विदधाति प्रयत्नतः।।55।।

इसके बाद बुद्धिमान आसुमल स्वयं सिद्धपुर नामक नगर में आये और यत्नपूर्वक वहाँ अपना कोई कार्य करने लगे।(55)

कार्यकालेऽपि स कृष्णं जपति स्म निरन्तरम्।
अतो भगवता तस्मै वाचः सिद्धिः समार्पिता।।56।।

अपने कार्य के समय भी वे लगातार भगवान श्रीकृष्ण का जप किया करते थे। अतः (उस तपस्या एवं जप आदि साधना के कारण) भगवान ने उन्हें वाक् सिद्धि का वरदान दिया।(56)

सिद्धिं सिद्धपुरे प्राप्य सदने स समागतः।
वहति निजभक्तानां योगक्षेमं स्वयं हरिः।।57।।

वे (आसुमल) सिद्धपुर में सिद्धि प्राप्त करके अपने घर को लौट आये। भगवान स्वयं अपने भक्तों के योगक्षेम का वहन करते हैं।(57)

एवं सिद्धपुरुषेषु प्राप्ता ख्यातिः स्वपत्तने।
समायन्ति नरा नार्यो दर्शनार्थमहरहः।।58।।

इस प्रकार अपने नगर में सिद्ध पुरुषों में उनकी गणना की जाती थी। अतएव स्त्री-पुरुष उनके दर्शन के लिये रात-दिन वहाँ आया करते थे।(58)

येन केन प्रकारेण लक्ष्मीः स्वयं समागता।
भ्राता स्वयं प्रसन्नोऽभून्माताऽपि मोदतेतराम्।।59।।

जिस किसी तरह (इस परिवार में) पुनः लक्ष्मी का स्वयं आगमन हो गया। भ्राता अपने आप प्रसन्न हो गये और माता भी बहुत प्रसन्न हुई।(59)

विलोक्य धर्मशास्त्राणि विरक्तं मानसमभूत्।
आसुमलोऽभवत्पूज्यो नगरेऽभूत्प्रतिष्ठितः।।60।।

धर्मशास्त्रों में पढ़कर (आसुमल का) मन (संसार से) विरक्त हो गया और आसुमल अपने नगर में पूजनीय एवं प्रतिष्ठित हो गये।(60)

परिचिनोति नात्मानं मूढजीवो विशेषतः।
मायया मोहतो नूनं जायते स पुनः पुनः।।61।।

यह मूढ़ जीव वस्तुतः अपनी आत्मा के स्वरूप को नहीं जानता। माया से मोहित होकर जीव इस संसार में बार-बार जन्म लेता है।(61)

एकदा मुदिता माता सस्नेहं जगाद सुतम्।
कार्यं कर्तुन शक्ताऽहंवृद्धा जाताऽस्मि साम्प्रतम्।।62।।
नूनं सुतवधूमेकां कामयेऽहं सुलक्षणाम्।
अतस्तव विवाहाय यतिष्ये सम्प्रति स्वयम्।।63।।

एक दिन माता ने प्रसन्न होकर सस्नेह उनसे (आसुमल से) कहाः "मैं अब वृद्ध हो गई हूँ और (घर का) कार्य करने में असमर्थ हो गई हूँ। निश्चय ही अब मैं एक गुणवती पुत्रवधू चाहती हूँ इसलिए अब तुम्हारे विवाह के लिए मैं स्वयं प्रयत्न करूँगी।"(62, 63)

विवाहं कामये नाहं बन्धनं जायते वृथा।
तव सेवां विधास्यामि यथाशक्ति प्रयत्नतः।।64।।
अहं कल्याणकामाय सर्वभूतहिताय च।
प्रेषितो वासुदेवेन मृत्युलोके विशेषतः।।65।।

(आसुमल ने कहाः) "मैं विवाह करना नहीं चाहता। विवाह वृथा बन्धन है। मैं तुम्हारी सेवा के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा। मुझे जनकल्याण के लिए एवं सब प्राणियों के हित के लिए भगवान वासुदेव ने विशेष रूप से इस मृत्युलोक में भेजा है।"(64, 65)

चर्चां श्रुत्वा विवाहस्य स्वगृहात्स पलायितः।
तस्यान्वेषणे बन्धून् विगताः सप्तवासराः।।66।।

(घर में) अपने विवाह की चर्चा सुनकर वे (आसुमल) स्वयं घर से भाग गये और फिर उनकी खोज में बन्धु-बान्धवों को सात दिन लग गये।(66)

अशोकाश्रमे लब्धो भरूचाख्ये प्रयत्नतः।
विवाहबन्धनं तस्मै नासीद्रुचिकरं तदा।।67।।

खोज करने पर भरूच नगर में स्थित अशोक आश्रम में वे मिले। उस समय भी उन्हें विवाह का बन्धन रूचिकर नहीं था।(67)

विवाहार्थं पुनः मात्रा स्वपुत्रः प्रतिबोधितः।
मातुराज्ञां शिरोधार्य सोऽपि सहमतोऽभवत्।।68।।

माता ने अपने पुत्र को विवाह के लिये फिर समझाया। माता की आज्ञा शिरोधार्य करके (न चाहते हुए भी) वे विवाह के लिए सहमत हो गये।(68)

आदिपुरं तदायाता वरयात्रा सबान्धवाः।
परिणीता तदा लक्ष्मीः सुन्दरीशुभगाशुभा।।69।।

सब बन्धु-बान्धवोंसहित आदिपुर नामक नगर में बारात गई और वहाँ शुभ सौभाग्यवती सुन्दर कन्या लक्ष्मीदेवी के साथ शादी की।(69)

संतोषिता मया माता स्वयं बद्धोऽस्मि साम्प्रतम्।
कमलपत्रवत्सर्गे निवासो हि हितप्रदः।।70।।

(विवाह के बाद आसुमल ने विचार किया:) 'मैंने विवाह करके माता को तो प्रसन्न कर दिया (किन्तु) अब मैं स्वयं (सांसारिक बन्धनों) से बँध गया हूँ। सचमुच इस समय संसार में कमलपत्र की तरह रहना ही मेरे लिये हितप्रद है।'(70)

मायया मोहितो जीवः कामादिभिः पराजितः।
समासक्तः स संसारे सुखं तत्रैव मन्यते।।71।।

माया से मोहित जीव काम-क्रोधादि से अभिभूत होकर संसार में आसक्त हो जाता है और वह सुख मानता है।(71)

धर्मं वीक्ष्य तदा तेन वामाङ्गी प्रतिबोधिता।
अहं स्वकार्यसिद्धयर्थं व्रजामि सम्प्रति प्रिये।।72।।
पालय त्वं निजं धर्मं मातुः सेवां सदा कुरु।
आगमिष्याम्हं शीघ्रं प्रभुं प्राप्य वरानने।।73।।

(अपने गृहस्थ) धर्म पर विचार करते हुए उन्होंने (आसुमल ने) अपनी पत्नी को समझाया: "हे प्रिये ! मैं अपने कार्य की सिद्धि के लिए अब जा रहा हूँ। हे सुमुखी ! तू अपने धर्म का पालन कर और सदैव माँ की सेवा कर। मैं प्रभुप्राप्ति करके शीघ्र ही वापस आ जाऊँगा।" (72, 73)

प्रणम्य द्वारिकाधीशं वृन्दावनं जगाम सः।
तत्रतः स हरिद्वारं हृषिकेशं ततो गतः।।74।।

(इस प्रकार पत्नी को समझाकर आसुमल) भगवान द्वारिकाधीश के प्रणाम करके वृन्दावन गये। वहाँ से वे हरिद्वार और फिर हृषिकेश गये।(74)

परं ज्ञानपिपासा तु नैव शांतिमगात्तदा।
तत्रतो दैवयोगेन नैनीतालवनं गतः।।75।।

लेकिन (इन तीर्थों में भ्रमण करने पर भी। उनकी ज्ञानपिपासा शांत नहीं हुई। वहाँ से वे दैवयोग से स्वयं ही नैनीताल के अरण्य में गये।(75)

तदा तत्रैव संजातं लीलाशाहस्य दर्शनम्।
तदानीं योगनिष्ठः स योगी योगविदां वरः।।76।।

तब वहाँ पर पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज के दर्शन हुए। वे उस समय योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ योगनिष्ठ योगी थे।(76)

समस्ते भारते वर्षे ब्रह्मविद्याविशारदः।
एक आसीत्स पुण्यात्मा तपस्वी ब्रह्मणि स्थितः।।77।।

(उन दिनों) वे समस्त भारतवर्ष में ब्रह्मविद्या में विशारद, पुण्यात्मा, तपस्वी एवं एक ब्रह्मवेत्ता (पूज्य श्री लीलाशाहजी महाराज) थे।(77)

आसुमलं विलोक्य स मनसि मुदितोऽभवत्।
योगी योगविदं वेत्ति योगमायाप्रसादतः।।78।।

आसुमल को देखकर वे (योगीराज) मन में प्रसन्न हुए। योगी लोग अपनी योगमाया के प्रभाव से योगवेत्ता को पहचान लेते हैं।(78)

तस्य दिव्याकृतिं प्रेक्ष्य साधनां पूर्वजन्मनः।
मुमुदे योगिराजोऽपि रत्मासादितं मया।।79।।

उनका (आसुमल का) दिव्य स्वरूप एवं पूर्व जन्म की साधना को जानकर योगीराज प्रसन्न हुए। (उन्होंने मन-ही-मन अनुभव किया किः) 'आज मैंने (शिष्य के रूप में) एक रत्न प्राप्त किया।' (79)

प्रणम्य योगिराजं स पार्श्वे तेषामुपाविशत्।
महतां दर्शनेनैव हृदयं चन्दनायते।।80।।

(तब आसुमल) योगिराज को प्रणाम करके उनके पास बैठ गये (क्योंकि) महान् पुरुषों के दर्शन से हृदय चन्दन की तरह शीतल हो जाता है।(80)

कस्त्वं कुतः समायातः पृष्टः स योगिना स्वयम्।
किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्तते।।81।।

योगीराज ने स्वयं उनसे पूछाः "तुम कौन हो? कहाँ से आये हो और यहाँ (आश्रम में) किसलिये आये हो? तुम्हारे मन में क्या विचार है?"(81)

कोऽहमोहितो नूनं जानेऽहं ज्ञातुमिच्छामि साम्प्रतम्।
माययामोहितो नूनं मर्त्यलोके भ्रमाम्यहम्।।82।।
जीवः स्वरूपबोधं तु न जानाति गुरुं विना।
भवतां पादपद्मेऽहमतएव समागतः।।83।।

(आसुमल ने कहाः) "मैं कौन हूँ यह तो मैं (स्वयं भी) नहीं जानता। यह तो मैं आज (आप से) जानना चाहता हूँ। मैं तो इस संसार की माया से मोहित होकर इस मृत्युलोक में भटक रहा हूँ। गुरु के बिना जीव अपने आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं पा सकता। आपके चरणकमलों में मैं इसलिए (स्वरूपबोध) के लिए आया हूँ।" (82, 83)

अस्तु तात ! कुरु सेवामाश्रमस्य विशेषतः।
सेवया मानवो लोके कल्याणं लभते ध्रुवम्।।84।।

(पूज्य सदगुरुदेव श्री लीलाशाह जी महाराज बोलेः) "अच्छा वत्स ! सेवा करो और विशेष रूप से आश्रम की सेवा करो। सेवा से ही मनुष्य इस संसार में निश्चित रूप से कल्याण प्राप्त कर सकता है।"(84)

सप्तति दिवसा याताः योगी तोषमगात्तदा।
गुरुमंत्रं तदा दत्तमासुमलाय धीमते।।85।।

(इस प्रकार आश्रम में सेवा करते हुए आसुमल को) सत्तर दिन बीत गये तब योगीराज प्रसन्न हुए और उन्होंने बुद्धिमान आसुमल को गुरुमंत्र दिया।(85)

विधेहि साधनां नित्यं गुरुणा प्रेरितः स्वयम्।
सोऽपि तत्र चिरं स्थित्वा साधनायां रतोऽभवत्।86।।

गुरुदेव ने (आसुमल को) स्वयं ही प्रेरणा दी किः "नित्य साधना करो।" (आसुमल भी) वहाँ चिरकाल तक ठहर कर साधना में लीन हो गये।(86)

गुरुणा शिक्षिताः सर्वा ध्यानयोगादिकाः क्रियाः।
समाधिस्थः स तत्रापि दर्शनं कृतवान्हरेः।87।।

(वहाँ पर) गुरुदेव ने ध्यानयोग आदि की समस्त क्रियाएँ उन्हें सिखाई। वहाँ समाधिस्थ उन्होंने (आसुमल) ने भगवान के दर्शन किये।(87)

साम्प्रतं त्वं गृहं याहि योगसिद्धो भविष्यसि।
किन्तु गृहस्थधर्मस्य मा कुरु त्वं निरादरम्।88।।

"अब तुम अपने घर जाओ। तुम योगसिद्ध हो जाओगे, किन्तु गृहस्थ धर्म का अनादर मत करना।(88)

एवं सिद्धिं समासाद्य गुरुं नत्वा पुनः पुनः।
समायातो निजावासमासुमलो महामनः।89।।

इस प्रकार सिद्धि प्राप्त करके और गुरुदेव को बार-बार नमस्कार करके श्रेष्ठ मन वाले आसमुल अपने घर को वापिस आये।(89)

योगिनमागतं वीक्ष्य नूनं नगरासिनः।
बभूवुः मुदिताः सर्वे स्वजना बन्धुबान्धवाः।।90।।

योगी (आसुमल) को (घर) आया देखकर सब नगरनिवासी एवं सज्जन, बन्धु-बान्धव आदि सब सचमुच प्रसन्न हुए।(90)

जातः सिद्धपुरुषः स नगरे प्रान्ते विशेषतः।
सिद्धयन्ति सर्वकार्याणि नूनं तस्य शुभाशिषा।91।।

वे (आसुमल) नगर एवं समस्त (गुजरात) प्रान्त में सिद्ध पुरुष हुए और उनके आशीर्वादमात्र से लोगों के सब कार्य सिद्ध होते हैं।(91)

समाधि ध्यानयोगे च कालो याति स्म तत्त्वतः।
पठति स्म स शास्त्राणि गृहे नित्यं विशेषतः।92।।

उनका समय वस्तुतः समाधि और ध्यानयोग में बीतता था और विशेष करके वे अपने घर में धर्मशास्त्रों का अध्ययन करते थे।(92)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अथ तृतियो सर्गः

अर्धमासे गते सोऽपि निरगच्छत्पुनर्गृहात्।
नूनं न रमते चेतो निजवासेऽपि योगिनः।।93।।

(घर आने के) पन्द्रह दिन बाद ही आसुमल पुनः घर छोड़कर चले गये। निश्चय ही योगी का मन अपने घर में नहीं लगता था। (93)

श्रुत्वाऽऽवासं तदा माता मोटीकोरलमागता।
तया पुनः गृहं गन्तुं तनयः प्रतिबोधितः।।94।।

तब (आसुमल का) निवास सुनकर माता भी मोटी कोरल मे आई और फिर पुत्र को घर लौट जाने के लिये समझाया।(94)

मम शेषमनुष्ठानं मातः ! सम्प्रति वर्तते।
तदन्ते ह्यागमिष्यामि कृत्वा पूर्णमिदं व्रतम्।।95।।

(आसुमल ने कहाः) "हे माता ! मेरा अनुष्ठान अभी कुछ बाकी है। मैं इस व्रत को पूर्ण करके फिर घर अवश्य आ जाऊँगा।"(95)

एवं संतोषिता माता प्रेषिता पत्तनं प्रति।
महान्तो महतां कार्यं जानन्ति नेतरे जनाः।।96।।

(आसुमल ने) इस प्रकार संतुष्ट हुई माता को ग्राम में भेज दिया। महान् लोगों के कार्य महान् लोग ही जानते हैं, अन्य लोग नहीं जानते।(96)

अनुष्ठाने समाप्ते स चचाल ग्रामाद्यदा।
विलपन्ति तदा सर्वे नूनं ग्रामनिवासिनः।।97।।

अनुष्ठान की समाप्ति पर जब वे (आसुमल) ग्राम से रवाना हुए तब सब ग्रामवासी लोग सचमुच विलाप करने लगे।(97)

तत्रतः स समायातो मुम्बईपुटमेदने।
लीलाशाह महाराजो यत्र स्वयं विराजते।।98।।

वहाँ से वे (आसुमल) मुम्बई नगर में आये, जहाँ पर गुरुदेव लीलाशाहजी महाराज स्वयं विराजमान थे।(98)

गुरुणां दर्शनं कृत्वा कृतकृत्यो बभूव सः।
गुरुवरोऽपि प्रेक्ष्य तं मुमुदे सिद्धसाधकम्।।99।।

गुरुदेव के दर्शन करके वे (आसुमल) कृतकृत्य हो गये और गुरुदेव भी उस सिद्धिप्राप्त साधक को देखकर बहुत प्रसन्न हुए।(99)

वत्सं ! ते साधना दिव्यां विलोक्य दृढनिश्चयम्।
प्रगतिं ब्रह्मविद्यायां मनो मे मोदतेतराम्।।100।।

"बेटा ! तेरी दिव्य साधना, दृढ़ निश्चय एवं ब्रह्मविद्या में प्रगति देखकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हो रहा है।"(100)

साक्षात्कारो यदा जातस्तस्य स्वगुरुणा सह।
तदा स्वरूपबोधोऽपि स्वयमेवह्यजायत।।101।।

गुरुदेव के साथ जब उनकी भेंट हुई तब उनको (आसुमल को) स्वयं ही स्वरूपबोध (आत्मज्ञान) हो गया।(101)

गुरुणामशिषा सोऽपि स्वात्मानन्दे स्थिरोऽभवत्।
आनन्दसागरे मग्नो मायामुक्तो बभूव सः।।102।।

गुरुदेव की आशीष से वे (आसुमल) भी आत्मानन्द में स्थिर हो गये और आनन्दसागर में निमग्न वे (संसार की) माया से मुक्त हो गये।(102)

त्वया ब्राह्मी स्थितिः प्राप्ता योगसिद्धोऽसि साम्प्रतम्।
योगिनं नैव बाधन्ते नूनं कामादयोस्यः।।103।।
समदृष्टिस्तवया प्राप्ता पूर्णकामोऽसि साम्प्रतम्।
एवं विधो नरः सर्वान्समभावेन पश्यति।।104।।

"वत्स ! तुमने इस समय ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर ली है और योगविद्या में तुम सिद्ध हो गये हो। योगी को काम-क्रोधादि शत्रु कभी नहीं सताया करते। अब तुमने (योगबल से) समदृष्टि प्राप्त कर ली है और तुम पूर्णकाम हो गये हो। ऐसा पुरुष सबको (प्राणीमात्र) को समभाव से देखता है।"(103, 104)

गुरुणां पूर्णतां प्राप्य नश्यति सर्वकल्मषम्।
अपूर्णः पूर्णतामेति नरो नारायणायते।।105।।

गुरुदेव से पूर्णता प्राप्त करके (मनुष्य के) सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अपूर्ण (मनुष्य) पूर्णता को प्राप्त कर लेता है और नर स्वयं नारायण हो जाता है।(105)

ईशनेत्रख नेत्राब्दे ह्याश्विनस्य सिते दले।
द्वितीयायां स्वयमासुस्वरूपे स्थितोऽभवत्।।106।।

विक्रम संवत 2021 आश्विन सुदी द्वितिया को आसुमल को गुरुकृपा से अपने स्वरूप का बोध हुआ।(106)

समदृष्टिं यदा जीवः स्वतपसाऽधिगच्छति।
तदा विप्रं गजं श्वानं समभावेन पश्यति।।107।।

जब जीव अपनी तपस्या से समदृष्टि प्राप्त कर लेता है तब वह ब्राह्मण, हाथी एवं कुत्ते को सम भाव से देखता है। (अर्थात् उसे समदृष्टि से जीवमात्र में सत्य सनातन चैतन्य का ज्ञान हो जाता है।(107)

गच्छ वत्स ! जगज्जीवान् मोक्षमार्गं प्रदर्शय।

अधुनाऽऽसुमलेन त्वं आसारामोऽसि निश्चयः।।108।।

निजात्मानं समुद्धर्तुं यतन्ते कोटिशो नराः।

परं तु सत्य उद्धारः ज्ञानिना एव जायते।।109।।

कुरु धर्मोपदेशं त्वं गच्छ वत्स ममाज्ञया।

जनसेवां प्रभुसेवां प्रवदन्ति मनीषिणः।।110।।

(परम सदगुरु पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ने कहाः) "वत्स ! अब तुम जाओ और संसार के जीवों को मोक्ष का मार्ग दिखाओ। अब तुम मेरे आशीर्वाद से 'आसुमल' के स्थान पर निश्चय ही 'आसाराम' हो। अपने आप का उद्धार करने के लिए के लिये तो करोड़ों लोग लगे हुए हैं, किन्तु सच्चा उद्धार तो ज्ञानी के द्वारा ही होता है। बेटा ! तुम जाओ और मेरी आज्ञा से जनता को धर्म का उपदेश करो। विद्वान लोग जनसेवा को ही प्रभुसेवा कहते हैं।"(108, 109, 110)

प्रणम्य गुरुदेवं स डीसाऽऽश्रमे समागतः।

बनासस्य तटे तत्र विदधाति स साधनाम।।111।।

गुरुदेव को प्रणाम करके वे (संत श्री आसारामजी बापू) वहाँ से डीसा के आश्रम में आये और वहाँ बनास नदी के तट पर नित्य प्रति साधना करने लगे।(111)

प्रातः सायं स्वयं गत्वा ध्यानमग्नः स जायते।

निर्ममो निरहंकारो रागद्वेषविवर्जितः।।112।।

वे प्रातः सायं बनास (नदी के तट पर) जाकर ध्यान में मग्न हो जाया करते थे। वे ममता, अहंकार एवं राग और द्वेष से रहित थे।(112)

आयाति स्म जपं कृत्वा एकदा स निजाश्रमम्।

दृष्टो जनसमारोहो मार्गे तेन तपस्विना।।113।।

एक दिन वे (नदी के तट पर) जप-ध्यानादि करके जब अपने आश्रम की ओर आ रहे थे तब उन तपस्वी ने मार्ग में एक जनसमूह को देखा।(113)

पश्यन्ति मरणास्थां गामेकां परितः स्थिताः।

एकं जनं समाहूय जगाद च महामनाः।।114।।

गत्वा गवि जलस्यास्य कुरु त्वमभिषेनम्।

उत्थाय चलिता धेनुस्तेन दत्तेन वारिणा।।115।।

ये लोग एक मृत गाय के पास चारों ओर खड़े उसे देख रहे थे। उन मनस्वी संत ने (उनमें से) एक आदमी को अपने पास बुलाकर उससे कहाः "तुम जाकर उस गाय पर इस जल का अभिषेचन करो।" (उन संत ने) दिये हुए जल के अभिषेचन से वह गाय उठकर चल पड़ी।(114, 115)

अहो ! तपस्विनां शक्तिर्विचित्राऽस्ति महीतले।

कीर्तयन्ति तदा कीर्तिं सर्वे ग्रामनिवासिनः।।116।।

(गाय को चलती देखकर लोगों ने आश्चर्य व्यक्त किया और कहाः) "अहो ! पृथ्वी पर तपस्वियों की शक्ति विचित्र है !" (इस प्रकार) गाँव के सब निवासी (संत की) कीर्ति का गुणगान करने लगे।(116)

नारायण हरिः शब्दं श्रुत्वैका गृहिणी स्वयम्।
अभावपीडिता नारी प्रत्युवाच कटुवचः।।117।।
युवारूपगुणोपेतो याचमानो न लज्जसे।
स्वयं धनार्जनं कृत्वा पालय त्वं निजोदरम्।।118।।

(एक बार संत श्री आसारामजी ने तपस्वी धर्म पालने की इच्छा से भिक्षावृत्ति करने का मन बनाया और गाँव में एक घर के आगे जाकर कहाः) "नारायण हरि...." यह सुनकर अभाव से पीड़ित गृहस्वामिनी ने अति कठोर वाणी में कहाः "तुम नौजवान और हट्टे-कट्टे होते हुए भी यह भीख माँगते तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुम स्वयं कमाकर अपना उदरपालन करो।(117, 118)

बोधितो योगिना सोऽपि विवाहाद्विरतोऽभवत्।
महात्मा संप्रतिजातः सोऽपि तेषां शुभाशिषा।।120।।

योगीराज द्वारा समझाया हुआ वह भी (तीसरे) विवाह से विरक्त हो गया। उनके शुभ आशीर्वाद से वह भी महात्मा बन गया।(120)

शिवलालः सखा तस्य दर्शनार्थं समागतः।
कुटीरे साधनाऽऽसक्तो भोजनं कुरुते कुतः।।121।।

उनके मित्र शिवलाल (संत जी के) दर्शन के लिए आया। वह रास्ते में सोचने लगाः 'कुटिया में साधना में मग्न (ये संत) भोजन कहाँ से करते हैं?' (121)

मनसा चिन्तितं तस्य पूज्यबापूः स्वयमवेत्।
भाषणे स जगाद तं मिथ्यास्ति तव चिन्तनम्।।122।।
अद्यापि वर्तते पिष्टं भोजनाय ममाश्रमे।
चिन्तां परदिनस्य तु वासुदेवो विधास्यति।।123।।
योगक्षेमं स्वभक्तानां वहति माधवः स्वयं।
एवं स शिवलालोऽपि साधनायां रतोऽभवत्।।124।।

उसने अपने मन में जो विचार किया था, पूज्य बापू ने सत्संग में उसका जिक्र किया और कहाः "तेरा सोचना मिथ्या है (क्योंकि) मेरे आश्रम में भोजन के लिए आज भी आटा है और अगले दिन की चिन्ता भगवान वासुदेव करेंगे। अपने भक्तों के योगक्षेम की रक्षा तो भगवान श्रीकृष्ण स्वयं करते हैं।" इस प्रकार वे शिवलाल भी (सत्संग के प्रभाव से) भगवद् आराधना में लग गये।(122, 123, 124)

पंगुमेकं रूदन् दृष्टवा पारमिच्छन्नदीटम्।

शीघ्रमारोपितं स्कन्धे नदीपारं तदाऽकरोत्।।125।।

(एक बार) नदी के पार करने की इच्छावाले एक पंगु को रूदन करता हुआ देखकर (श्री आसारामजी बापू ने) शीघ्र ही उसको अपने कंधे पर बैठाकर नदी पार करवा दी।(125)

कार्यं कर्तुमशक्तोऽहं पीडितः पादपीडया।

स्वकीय कर्मशालायाः श्रेष्ठिनाहं बहिष्कृतः।।126।।

किं करोमि क्व गच्छामि चिन्ता मां बाधतेतराम्।

कुतोऽहं पालयिष्यामि परिवारमतः परम्।।127।।

(मजदूर ने कहाः) "मैं काम करने में असमर्थ हूँ क्योंकि मेरे पैर चोट लगी हुई है। सेठ ने मुझे काम से निकाल दिया है। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मुझे यह चिन्ता सता रही है कि अब मैं अपने परिवार का पालन कैसे करूँगा?" (126, 127)

गन्तव्यं तु त्वया तत्र कार्यसिद्धिर्भविष्यति।

एवं स सफलो जातस्तदा तेषां शुभाशिषा।।128।।

(पूज्य बापू ने कहाः) "अब तुम फिर वहाँ जाओ। तुम्हारा कार्य सिद्ध हो जायेगा।" इस प्रकार उनके (संत के) शुभाशीर्वाद से वह सफल हो गया। (128)

पूज्यबापुप्रभावेण मद्यपा मांसभक्षिणः।

सर्वे सदवृत्यो जाता अन्ये व्यसनिनोऽपि च।।129।।

शराब पीने वाले, मांस खाने वाले लोग एवं अन्य व्यसनी भी पूज्य बापू के प्रभाव से सदाचारी हो गये।(129)

प्रवचने समायान्ति नानार्यो अनेकधा।

योगिना कृपया भूतः डीसा वृन्दावनमिव।।130।।

(वहाँ उनके) प्रवचन में अनेक प्रकार के स्त्री और पुरुष आते थे। (वहाँ) योगी की कृपा से वह डीसा नगर उस समय वृंदावन-सा हो गया था।(130)

समायान्ति सदा तत्र बहवो दुःखिनो नसः।

लभन्ते हृदये शांतिं रोगशोकविवर्जिताः।।131।।

अनेक दुःखी लोग सदा वहाँ (सत्संग में) आया करते थे और वे रोग, शोक एवं चिन्ता से मुक्त होकर हृदय में शांति प्राप्त करते थे।(131)

संतस्य कृपा नूनं तरन्ति पापिनो नराः।

परन्तु पापिना सार्धं धार्मिकोऽपि निमज्जति।।132।।

संत की कृपा से पापी लोग भी (भवसागर से) पार हो जाया करते हैं किन्तु पापी के साथ धार्मिक लोग भी डूब जाया करते हैं।(132)

को भेदो वदत यूयं सुविचार्य विशेषतः।

साधुषु योगसिद्धेषु साधारणजनेषु च।।133।।

(एक बार सभा में योगीराज ने श्रोताओं से पूछाः) "आप सब लोग विशेष रूप से विचार कर बताइये कि योगसिद्ध साधुओं में और साधारण मनुष्यों में क्या अन्तर है? (133)

एकः श्रोता जगाद तं कोऽपि भेदो न विद्यते।
समाना मानवाः सर्वे वदन्तीति मनीषिणः।।134।।

(उनमें से) एक श्रोता ने कहाः "(योगी और साधारण जन में) कोई भेद नहीं है। विद्वान लोग कहते हैं कि सब मानव समान हैं।"(134)

चचाल तत्रतो योगी विहाय स निजाश्रमम्।
केवलमेकवस्त्रेण सहितं स तपोधनः।135।।

(श्रोता से यह उत्तर सुनकर) तपस्वी योगीराज केवल एक वस्त्र (केवल अधोवस्त्र) के साथ आश्रम को छोड़कर चल पड़े।(135)

प्रार्थनां कृतवन्तरते सर्वे भक्ता मुहुर्मुहुः।
परन्तु साधवो नूनं भवन्ति दृढनिश्चयाः।।136।।

(वहाँ सभा में स्थित) सभी श्रोताओं ने बार-बार (संत से) प्रार्थना की किन्तु साधु लोग तो अपने निश्चय पर सदैव स्थिर रहते हैं।(136)

मायया मोहता नूनं न भवन्ति तपस्विनः।
त्यजन्ति ममतां मोहं कामरागविवर्जिताः।।137।।

तपस्वी लोग माया से मोहित कभी नहीं होते, काम और राग से रहित (संत लोग) मोह और ममता को त्याग देते हैं।(137)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अथ चतुर्थो सर्गः

तत्रतः स समागच्छन्नारेश्वरवने घने।
नर्मदातटमासाद्य समाधिस्थो बभूव सः।।138।।

वहाँ से वे (योगीराज) नारेश्वर के गहन वन में आ गये। वहाँ पर नर्मदा नदी के तट पर कर समाधिस्थ हो गये।(138)

न हिंस्रेभ्यो न चौरेभ्यो बिभ्यति समदृष्टयः।
भास्करो उदयं याति जले कूर्दन्ति मण्डूकाः।।139।।
तेषां छपछपशब्दैर्ध्यानभङ्गोऽप्यजायत।
प्रातःक्रियां तदा कृत्वा तत्र पुनरूपाविशत्।।140।।

समदृष्टिवाले (सिंह आदि) हिंस्र जीवों से एवं चोरों से नहीं डरते। सूर्योदय हो गया। (नदी के) जल में मेंढक कूद रहे थे। उन मेंढकों के छप-छप शब्द से योगी का ध्यान भंग हो गया। प्रातर्विधियों से निवृत्त होकर वे (योगीराज) पुनः वहीं पर बैठ गये।(139, 140)

क्षुधा मां बाधते किन्तु न गमिष्यामि साम्प्रतम्।
परीक्षेऽहं हरेर्वाक्यं योगक्षेमं वहाम्यहम्।।141।।

"मुझे भूख तो लग रही है किन्तु अब मैं (भिक्षा के लिए) कहीं न जाऊँगा। मैं आज भगवान श्रीकृष्ण के वाक्य - 'योगक्षेमं वहाम्यहं' की परीक्षा करूँगा।"(141)

तदा द्वौ कृषको तत्र समायातौ नदीतटे।
श्रीमन् गृहाण दुग्धं त्वं मधुराणि फलानि च॥142।।

तब दो किसान वहाँ नदी तट पर (संत के पास) आये (और कहने लगेः) "श्रीमन् ! आप यह दूध एवं कुछ मधुर फल (हमसे) ग्रहण करें।"(142)

भवन्तौ कुत आयातौ केनात्र प्रेषितावुभौ।
इदं दुग्धमहं मन्ये मदर्थे नास्ति निश्चितम्।।143।।

(पू. बापू ने उन दोनों से पूछाः) "आप कहाँ से आये हैं और आप दोनों को यहाँ किसने भेजा है? मैं मानता हूँ कि यह दूध निश्चित ही मेरे लिए नहीं है।"(143)

केनेदं प्रेषितं दुग्धं न जानेऽहं वदामि किम्।
निश्चयं स निराकारः साकारो जायतेऽधुना।।144।।

(संत श्री ने मन ही मन सोचाः) "यह दूध यहाँ किसने भेजा है,यह तो मैं नहीं जानता, अतः इस विषय में कुछ नहीं कह सकता। निश्चय ही वह निराकार ही यहाँ साकार हो रहा है।"(144)

अस्माभिः स्वप्ने दृष्टा नूनं सैव तवाकृति।
अस्ति तुभ्यमिदं दुग्धं नात्र कार्या विचारणा।।145।।
अस्माकं नगरे श्रीमन् संतः कोऽपि न विद्यते।
अतस्त्वां तत्र नेष्यामः सर्वे ग्रामनिवासिनः।।146।।

(किसानों ने कहाः) "हमने स्वप्न में जो रूप देखा था, अवश्य ही वह आपकी आकृति से मिलता जुलता था। अतः यह दूध आपके लिए ही है, इस विषय में आप कोई विचार न करें। श्रीमान् जी ! हमारे नगर में इस समय कोई संत-महात्मा नहीं है। इसलिए ग्राम के सब निवासी लोग आपको गाँव में ले जायेंगे।"(145, 146)

इत्युक्त्वा गतौ ग्रामं तदा तेनापि चिन्तितम्।
मोहमायाविनाशाय साधूनां भ्रमणं वरम्।।147।।

यह कहकर वे दोनों तो (दूध-फल वहाँ रखकर अपने) गाँव की ओर चले गये। (तब योगीराज ने भी अपने मन को विचार किया कि) मोह माया के विनाश हेतु साधुओं के लिए भ्रमण करते रहना ही उचित है। (किसी एक स्थान पर ठहरना ठीक नहीं।(147)

गुरोराज्ञां तदा प्राप्य गिरिं द्रष्टुं मनोदधे।
तत्रतः स हृषिकेशं भ्रमणार्थं समागतः।।148।।

वहाँ गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त करके इन्होंने पहाड़ देखने का मन बनाया और वहाँ से भ्रमण के लिए वे हृषीकेश आये।(148)

टिहरी नगरं प्राप्य लंका तेन विलोकिता।
तत्रतः पदयात्रापि नूनं कष्टतराऽभवत्।।149।।

वहाँ से टिहरी नगर में आये और मार्ग में लंका नामक स्थान को भी देखा। वहाँ से (पहाड़ की) पदयात्रा अधिक कष्टप्रद हो गई।(149)

अतीव कठिनो मार्गः आच्छादितो हिमोपलैः।
ग्रीष्मे तत्र समायान्ति यात्रार्थं शतशो नराः।।150।।

वहाँ हिमशालाओं से आच्छादित मार्ग अत्यंत ही कठिन था। वहाँ पर ग्रीष्म ऋतु में तो सैंकड़ों यात्री यात्रा के लिये आया करते हैं।(150)

आगता पावनी भूमिर्गङ्गाया उदगमस्थली।
यत्र स्नानादिकं कृत्वा तरन्ति पापिनो भवम्।।151।।

यह वह पवित्र भूमि थी जहाँ से गंगा का उदगम हुआ है। जहाँ पर स्नान आदि करके पापी लोग भवसागर से पार हो जाते हैं।(151)

वसति तत्र संन्यासी कोऽपि योगमदोद्धतः।
साधुसंन्यासिनः सर्वे तस्मात् बिभ्यति योगिनः।।152।।

वहाँ उस समय योगमद से उद्धत एक संन्यासी रहा करता था। वहाँ के सब साधु-संन्यासी लोग उस योगी से डरते थे।(152)

कपाटं मे कुटीरस्य कोऽयं खटखटायते।
मृतो वा जीवितः कोऽपि ज्ञातुमिच्छामि साम्प्रतम्।।153।।

(पूज्य बापू ने जाकर उस संन्यासी की कुटिया का द्वार खटखटाया तो वह संन्यासी भीतर से ही बोलाः) "यह मेरी कुटिया के कपाट कौन खटखटा रहा है? मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह कपाट खटखटाने वाला मृत है या जीवित है?"(153)

मृतोऽहं पूर्णरूपेण वाञ्छामि तव दर्शनम्।
पश्य त्वं बहिरागत्य जनोऽयं त्वां प्रतीक्षते।।154।।

(पू. बापू ने कहाः) "श्रीमन् ! मैं जीवित नहीं अपितु पूर्णतया मृत हूँ। आपके दर्शन करना चाहता हूँ। आप बाहर आकर देखें, यह व्यक्ति आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।

तदा स बहिरागत्य दृष्ट्वा बापुं पुरः स्थितम्।
आश्चर्यचकितो भूत्वा जगाद सादरं वचः।।155।।
अहो मे पूर्वपुण्येन ह्यभवद्दर्शनं तव।
तयोराध्यात्मिका चर्चा तदा जाता विशेषतः।।156।।

तब बाहर आकर उस योगी ने अपने सामने खड़े बापू को देखकर आश्चर्यचकित होकर आदरपूर्वक वचन बोलेः "आश्चर्य की बात है मेरे पूर्वपुण्यों के प्रताप से आपके दर्शन हुए हैं।" फिर उन दोनों में विशेष रूप से आध्यात्मिक चर्चा हुई।(155, 156)

सदैवात्र समायान्ति जीविता बहवो नराः।
परं मृतो नरो नूनं भवानेव समागतः।।157।।

(संन्यासी ने कहाः) "यहाँ हमेशा जीवित नर तो अनेक आते हैं किन्तु मृत व्यक्ति तो सचमुच आप ही आये हैं।"(157)

बद्रीकेदारयात्रापि योगिना विहिता तदा।
तीर्थेषु भ्रमता तेन कन्दरापि विलोकिता।।158।।

(उस भेंट के बाद) योगीराज ने बदरीनाथ और केदारनाथ की यात्रा भी की तथा तीर्थों में इधर-उधर घूमते हुए उन्होंने वहाँ गुफा भी देखी।(158)

एषाऽस्ति पावनी भूमिर्यत्र युगयुगान्तरात्।
तपः तप्तुं समायान्ति ब्रह्मणि निरता नराः।।159।।

यह वह पवित्र भूमि है जहाँ युग-युगान्तरों से ब्रह्म में निरत लोग तपस्या करने के लिए आते हैं।(159)

स्नानं विविधतीर्थेषु योगिनां दर्शनं तथा।
पुण्यवन्तो हि कुर्वन्ति जगत्यां नेतरे जनाः।।160।।

विभिन्न तीर्थ स्थानों में स्नान और योगियों के दर्शन संसार में पुण्यवान् लोग ही करते हैं, अन्य नहीं।(160)

तदाऽऽबुपर्वतं प्राप्य मंत्रमुग्धो बभूव सः।
घनघोरं वनं तत्र सौन्दर्यं परमादभुतम्।।161।।

फिर वे (बापू) आबू पर्वत पर आकर वहाँ का घनघोर वन एवं परम अदभुत (प्राकृतिक) सौन्दर्य देखकर वे मंत्रमुग्ध हो गये।(161)

ब्रह्मानन्दे निमग्नः स सायं प्रातः इतस्ततः।
अटति स्वेच्छया नूनं पर्वतेषु वनेषु च।।162।।

वहाँ ब्रह्मानन्द में निमग्न वे (बापू) स्वेच्छा से प्रातः सायं पर्वतों पर एवं वनों में इधर-उधर घूमते थे।(162)

योगिना सैनिको दृष्टः एकदा काननेऽटता।

रिक्तहस्तो भयाद् भीतः पथभ्रष्टो यथा नरः।।163।।

एक बार वहाँ वन में घूमते हुए योगीराज ने रिक्त हस्त एवं रास्ता भूल गया हो ऐसे एक भयभीत सैनिक को देखा।(163)

भ्रमन्ति परितो हिंस्रा रिक्तहस्तोऽहमागतः।
निश्चयं दैवयोगेन भवानत्र समागतः।।164।।

(वह सैनिक बोलाः) "हिंस्र जानवर (यहाँ) चारों ओर घूम रहे हैं। मैं खाली हाथ यहाँ आ गया हूँ। निश्चय ही आज आप दैव योग से इधर आ गये।" (164)

जगाद तं तदा बापुर्वृथाऽस्ति तव चिन्तनम्।
परिचिनोषि नात्मानमत एव बिभेषि त्वम्।।165।।

तब (पूज्यपाद संत श्री आसारामजी) बापू ने उससे कहाः "यह तुम्हारा विचार निरर्थक है। (वस्तुतः) तुम अपने आत्मस्वरूप को नहीं पहचानते, इसीलिए तुम डर रहे हो।(165)

शस्त्रबलं बलं नास्ति तवात्मनो बलं बलम्।
वृथा बिषेभि हिंस्रेभ्यः सत्यसनातनोऽसि त्वम्।।166।।
नाहं बिभेमि जीवेभ्यो मत्त बिभ्यन्ति नापि ते।
पश्य मां त्वमहं नित्यं भ्रमामि निर्जने वने।।167।।

(वास्तव) में शस्त्र का बल बल नहीं होता, तुम्हारी आत्मा का बल ही (वास्तविक) बल है। तुम वस्तुतः सत्य सनातन आत्मा हो और इन हिंस्र जीवों से वृथा ही डर रहे हो। तुम मुझे देखो, इन हिंस्र जीवों से मैं नहीं डरता और ये जीव भी मेरे से कभी नहीं डरते। मैं इस निर्जन वन में नित्य घूमता हूँ।"(166, 167)

अशस्त्रबलं व्यर्थं ब्रह्मविद्या बलं बलम्।
जगत्यां ब्रह्मवेत्तारः कालादपि न बिभ्यति।।168।।

(वस्तुतः) अस्त्र-शस्त्रों का बल व्यर्थ है। ब्रह्मविद्या का बल ही असली बल है। संसार में ब्रह्म को जाननेवाले लोग मौत से भी नहीं डरते।(168)

दर्शनार्थं समायातः तारबाबू मनोहरः।
प्रणम्य योगिनं सोऽपि क्षणं तत्र ह्युपाविशत्।।169।।

(एक दिन) तार बाबू मनोहर दर्शन के लिए वहाँ आया। वहाँ योगिराज को प्रणाम करके थोड़ी देर के लिए वहाँ बैठ गया।(169)

परन्तु दैवयोगेन समाधिस्थो बभूव सः।
सप्तवादनवेलायां ध्यानभङ्गोऽप्यजायत।।170।।

परन्तु दैवयोग से वह (वहाँ) समाधिस्थ हो गया। (सायं) सात बजने के समय उसका ध्यान टूटा।(170)

अत्र कथं न जानेऽहमुपाविशमियच्चिरम्।।

सतां शक्तिमनुभूय मनो मे मोदतेतराम्।।171।।

"मैं नहीं जानता हूँ कि इतने लम्बे समय तक मैं यहाँ पर कैसे बैठ गया ! संतों की शक्ति का अनुभव करके मेरा मन बहुत ही प्रसन्न हो रहा है।"(171)

वसुनेत्रखनेत्राब्दे गंगायाः पावने तटे।
हरिद्वारेऽभवत्पूज्य लीलाशाहस्य दर्शनम्।।172।।

(योगीराज वहाँ से हरिद्वार आ गये और) हरिद्वार में विक्रम संवत 2028 में पावन गंगा के तट पर पूज्य गुरुदेव श्री लीलाशाह जी महाराज के दर्शन हुए।(172)

प्रणम्य शिरसा देवं प्रत्युवाच स सादरम्।
मम योग्यां गुरो ! सेवां कृपया मां निवेदय।।173।।

पूज्य गुरुदेव को मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और आदर के साथ उनसे कहाः "गुरुदेव ! मेरे योग्य कोई सेवा की आज्ञा करें।"(173)

न कामये धनं धान्यं तथैव गुरुदक्षिणाम्।
कामये केवलं त्वत्तो जनसेवां तपोधन।।174।।
असारे खलु संसारे भ्रमन्ति कोटिशो नराः।
तेषां भवनिमग्नानां कुरु त्वमार्तिनाशनम्।।175।।
मत्तः शेषं त्वया कार्यं करणीयं प्रयत्नतः।
यथाशक्ति विधास्यामि कृपया भवतां गुरोः।।176।।

(गुरुदेव ने प्रत्युत्तर दियाः) "मैं तुमसे धन या धान्य नहीं चाहता और न ही गुरुदक्षिणा माँगता हूँ। हे तपोधन ! मैं तुमसे केवल जनसेवा की इच्छा करता हूँ। इस असार संसार में करोड़ों लोग भटक रहे हैं। तुम उन संसार में डूबे हुए लोगों का कष्ट दूर करो। (वत्स !) मेरे द्वारा जो कार्य शेष रह गया है, उसे पूर्ण करने का तुम प्रयत्न करो।" (बापू ने गुरुदेव से कहाः) "मैं आप गुरुदेव की कृपा से यथाशक्ति उस शेष कार्य को पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगा।"(174, 175, 176)

न संतं परिचिन्वन्ति नूनं सांसारिका नराः।
विरक्तोऽपि गुरुभक्त आसक्तः स प्रतीयते।।177।।

संसार के लोग वस्तुतः संत को पहचानते नहीं हैं। गुरुभक्त (बापू आसारामजी) विरक्त होते हुए भी लोगों को आसक्त-से प्रतीत हो रहे हैं।(177)

स्वीकृत्य गुरोराज्ञां गुप्तावासं निजेच्छया।
समाप्य सप्तवर्षाणां नगरं स समागतः।।178।।

पूज्य गुरुदेव की आज्ञा मानकर वे (योगीराज) स्वेच्छा से सात वर्ष का अज्ञातवास समाप्त करके अपने गृहनगर (अमदावाद) में आये।(178)

वसुनेत्रखनेत्राब्दे श्रावणस्य सिते दले।
पूर्णिमायाः प्रभाते स आजगाम गृहं पुनः।।179।।

विक्रम संवत 2028 श्रावण सुदी पूर्णिमा को प्रातः काल (सात साल के एकान्तवास के बाद) बापू पुनः घर में आये। (179)

सत्संगं विदधाति स्म तत्रापि स इतस्ततः।
तथैव साधनाकार्यं चलति स्म निरन्तरम्।।180।।

वे इधर-उधर सत्संग किया करते थे और उनका अपना साधनाकार्य निरन्तर चलता रहता था।(180)

एकान्तप्रकृतिप्रेमी शान्तो दान्तस्तपः प्रियः।
साबरतटमासाद्य ध्यानयोगं करोति सः।।181।।

शान्त, दान्त और तपस्वी, एकान्त-प्रकृतिप्रेमी बापू साबरमती नदी के तट पर आकर ध्यानयोग किया करते थे।(181)

मोटेराग्रामपार्श्वे स करोति स्म जपादिकम्।
तदा भक्तजनैस्तत्र पर्णशालापि निर्मिता।।182।।

मोटेरा गाँव के पास वे जपादि किया करते थे। तब वहीं पर भक्तजनों ने (उनके लिए) एक पर्णशाला का निर्माण किया।(182)

मोक्षकुटीर नाम्नी सा पर्णशालापि साम्प्रतम्।
मंगलदायिनी नूनं मोक्षधामायतेऽधुना।।183।।

'मोक्षकुटीर' नाम की वह मंगलदायक पर्णशाला इस समय 'मोक्षधाम' के रूप में परिणत हो गई है।(183)

उपदेशं करोत्यत्र बापुः योगविदां वरः।
आगच्छन्ति नरा नार्यः सत्संगार्थमहर्निशम्।।184।।

योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ बापू यहाँ (इसी मोक्षधाम में) उपदेश करते हैं। यहाँ रात दिन स्त्री पुरुष सत्संग के लिए आते रहते हैं।(184)

ददाति स्वेच्छया बापुः समस्ते विश्वमंडले।
जनकल्याणकामार्थमुपदेशमितस्ततः।।185।।

पूज्य बापू स्वेच्छा से इस समय समस्त विश्व में जनकल्याण की भावना से इधर-उधर (देश-परदेश) में उपदेश देते हैं।(185)

पुण्यवन्तो हि शृण्वन्ति कदापि नेतरेजनाः।
उदितं भास्करं नूनमुलूको नैव पश्यति।।186।।

सचमुच पुण्यशाली लोग ही (उपदेश का) श्रवण करते हैं। दूसरे लोग नहीं करते। (जैसे) उदित सूर्य को उल्लू कभी भी नहीं देख सकता। (इसी प्रकार पापी लोग सत्संग से लाभ नहीं उठा सकते।(186)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मोक्षधामः

अणुमात्रेण बीजेन वटवृक्षोऽपि जायते।
तथा मोक्षकुटीरोऽयं मोक्षधामायतेऽधुना।।187।।

अणु प्रमाण बीज से जैसे विशाल वटवृक्ष बन जाता है इसी प्रकार यह मोक्षकुटीर इस समय मोक्षधाम के रूप में परिणत हो रही है।(187)

दर्शनार्थं समायान्ति नरा नार्यः सहस्रशः।
लभन्ते सुखशांतिं च विधाय धामदर्शनम्।।188।।

हजारों स्त्री-पुरुष (इस आश्रम में) दर्शन के लिए आते हैं और वे इस मोक्षधाम के दर्शन करके सुख-शांति प्राप्त करते हैं।(188)

प्रेक्ष्य प्राकृतिकशोभामाश्रमस्य विशेषतः।
दुःखशोकादिभिर्मुक्तः भवति निर्मलं मनः।।189।।

विशेषरूप से आश्रम की प्राकृतिक शोभा को देखकर (दर्शनार्थियों का) मन दुःख-शोकादि से मुक्त होकर निर्मल हो जाता है।(189)

गुरुमंत्रं विना सिद्धिर्भवति न कदाचन।
अतो दीक्षामधिगन्तुं समायान्ति सदा नराः।।190।।

गुरुमंत्र के बिना कभी भी सिद्धि नहीं होती है, अतएव (गुरुमंत्र की) दीक्षा प्राप्त करने के लिए लोग सदा ही (इस धाम में) आते रहते हैं।(190)

विलोक्य नैसर्गिकरम्यशोभां
भक्ताः समस्ता मुदिता भवन्ति।
सौन्दर्यपूर्णैः रमणीयदृश्यै-
र्धामः स्वयं नन्दनकाननायते।।191।।

(मोक्षधाम की) प्राकृतिक रमणीय शोभा को देखकर सब भक्त लोग प्रसन्न हो जाते हैं। सौन्दर्यपूर्ण एवं रमणीय दृश्यों से युक्त यह मोक्षधाम स्वयं ही नन्दनवन जैसा प्रतीत होता है।(191)

जलेनाप्लाविता जाता आश्रमस्य वसुन्धरा।
तदा बापुप्रभावेण जलं शीघ्रमवातरत्।।192।।

(एक बार नदी में भयंकर बाढ़ आने के कारण) आश्रम की भूमि जल में निमग्न हो गई तब बापू के प्रभाव के कारण (वह बाढ़ का) जल स्वतः ही उतर गया।(192)

कृपया पूज्य बापूनां 'नारी उत्थान आश्रमः'।

स्थापितः साधकैस्तत्र सुन्दरादपि सुन्दरः।।193।।

साधकों ने पूज्य बापू की कृपा से अति सुन्दर 'नारी उत्थान आश्रम' की स्थापना की।(193)

सेवासाधनानिरता कुर्वन्ति कीर्तनं जपम्।
भवन्ति मातरो नूनं ब्रह्मविद्याविशारदाः।।194।।

(इस आश्रम में) सेवा और साधना में रत माताएँ कीर्तन, जप, ध्यान करती हैं। सचमुच वे ब्रह्मविद्या में विशारद होती हैं।(194)

कुर्वन्ति साधका नित्यं कृषिकार्यं निजाश्रमे।
शाकञ्च कन्दमूलानि साधकेभ्यो वपन्ति ते।।195।।

अपने आश्रम में साधक लोग नित्य खेतीबाड़ी का कार्य करते हैं और साधक जनों के लिये शाक-सब्जी, कन्दमूल आदि बोते हैं।(195)

आश्रमे सन्ति गावोऽपि साधका पालयन्ति ताः।
दुग्धेन वर्द्धते नूनं विद्याबुद्धिस्तथा बलम्।।196।।

आश्रम में गायें भी हैं और साधक लोग उनका पालन करते हैं। क्योंकि गाय के दूध से सचमुच विद्या, बुद्धि और बल बढ़ता है।(196)

हवनस्य वेदिकां वीक्ष्य नितरां मोदते मनः
अहो ! प्राचीनकालोऽयं भारतस्य समागतः।।197।।

(यहाँ आश्रम में) हवन की वेदी देखकर मन बहुत ही प्रसन्न होता है। ऐसा लगता है मानो भारत में हमारा वह (ऋषि-मुनियों का) प्राचीन युग फिर आ गया हो।(197)

शारदासदनं रम्यं यत्र विद्याविशारदाः।
कुर्वन्ति मुद्रणं नित्यं पुस्तकानामहरहः।।198।।

(यहाँ आश्रम में) सुन्दर शारदासदन भी है जहाँ विद्वान एवं कुशल लोग रात-दिन पुस्तकों का मुद्रण कार्य करते हैं।(198)

अन्नपूर्णा सदा पूर्णा पूरयति मनोरथान्।
कुर्वन्ति यात्रिणो नित्यं पवित्रं शुद्धभोजनम्।।199।।

(यहाँ आश्रम में) सदा अन्नपूर्णा क्षेत्र भी सबके मनोरथ हमेशा पूर्ण करता है। यहाँ पर यात्री भक्तजन सदा पवित्र एवं शुद्ध भोजन करते हैं।(199)

बहूनि सन्ति कार्याणि योगवेदान्तमण्डले।
शिष्याः कुर्वन्ति सोत्साहं गणना नात्रविधियते।।200।।

योग वेदान्त समिति में बहुत कार्य हैं। शिष्य लोग उत्साह से कार्य करते हैं जिनकी गणना यहाँ करना संभव नहीं है।(200)

नूनमृषिप्रसादोऽयं मुद्रितं जायतेऽत्रतः।

सोऽपि गुरुप्रसादोऽस्ति कथयन्ति मनीषिणः।।201।।

यह 'ऋषि प्रसाद' (नाम की मासिक पत्रिका) वास्तव में इसी आश्रम से प्रकाशित होती है। विद्वान लोग कहते हैं कि यह 'ऋषि प्रसाद' ही गुरुप्रसाद है।(201)

रामायणविदं पुण्यमृद्धिसद्धिप्रदायकम्।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं कल्याणं लभते ध्रुवम्।।202।।

ऋद्धि-सिद्धप्रदायक इस पवित्र रामायण का जो नित्य प्रयत्नपूर्वक पाठ करता है, वह निश्चित ही कल्याण प्राप्त करता है।(202)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अथ पंचमो सर्गः

कोऽहं गुरो ! ब्रूहि कुतः समागतः
सर्गेण सार्धं मम कोऽस्ति योगः।
जानामि नाहं तु विधेर्विधानं
कथं निसर्गे पुनरागतोऽहम्।।203।।

(शिष्य पूछता हैः) "हे गुरुदेव ! यह बताइये कि मैं कौन हूँ और (यहाँ इस संसार में) कहाँ से आया हूँ (तथा इस) संसार के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है। मैं विधि (विधाता, दैव) के विधान को नहीं जानता अतः यह जानना चाहता हूँ कि इस संसार में मैं पुनः कैसे आ गया।"(203)

जीवोऽसि नूनं परमेश्वरांशः
जानासि त्वं नैव निजस्वरूपम्।
त्वं मोहमायाममताविलिप्तः
पुनः पुनः गर्भगुहामुपैषि।।204।।

(गुरुदेव कहते हैं-) "तू जीव है और निश्चित रूप से तू उस परमेश्वर का अंश है (किन्तु) तू अपने स्वरूप को नहीं जानता। (यही कारण है कि संसार की) मोह-माया और ममता में लिप्त तू बार-बार गर्भरूपी गुफा में जन्म धारण करता है।(204)

स सृष्टिकर्ता स च कालकालः
त्वं जीवभूतोऽपि सनातनोऽसि।
तत्त्वं तृतीयं क्षणिकं निसर्गं
मायामयं योगविदो वदन्ति।।205।।

वह (ईश्वर) सृष्टिकर्त्ता है और कालों का काल है। तू जीवरूप में स्थित होते हुए भी सनातन है तथा क्षणभंगुर और मायामय तीसरे तत्त्व को योगवेत्ता लोग संसार कहते हैं।(205)

न त्वं शरीरं न च ते शरीरं
नानेन सार्धं तव कोऽपि योगः।
जडेन स्राकं तब चेतनस्य
विलोक्य योगं चकितोऽहमस्मि।।206।।

(हे वत्स !) न तू शरीर है और न यह शरीर तेरा है। इस शरीर के साथ तेरा कोई भी सम्बन्ध देखकर मैं स्वयं चकित हूँ।(206)

बहूनि जन्मानि धृतानि पूर्वं
विलोकितो मृत्युरनेकबारम्।
जानासि किं यन्मोहेन सर्वे
समायान्ति सर्गे मृत्युं च जन्म।।207।।

(वत्स !) इससे पहले तूने अनेक जन्म धारण किये हैं और मृत्यु (के कष्ट) को भी अनेक बार देखा है। क्या तू जानता है कि मोह के कारण ही संसार में सभी प्राणी जन्म एवं मृत्यु को प्राप्त होते हैं?(207)

धनं न साध्यं नरजीवनस्य
कामोपभोगं न जनाधिपत्यम्।
नूनं भवाब्धौ हरिनाम साध्य-
मन्यानि सर्वाणि तु साधनानि।।208।।

धन, कामोपभोग एवं राजसत्ता मनुष्य जीवन का साध्य नहीं है। निश्चय ही संसाररूपी समुद्र में भगवान का नाम ही साध्य है। शेष सब कार्य साधन हैं।(208)

सर्गेण रागः प्रभुणा विरागो
ध्रुवं तवेदं विपरीतकार्यम्।
रामेण सार्धं तु विधेहि रागं
तथा च सर्गेण समं विरागम्।।209।।

संसार में राग रखना और भगवान से वैराग्य होना यह निश्चित ही तेरा विपरीत कार्य है। सम (ईश्वर) के साथ तू प्रेम कर और संसार के साथ वैराग्य कर।(209)

धनार्जनं त्वं विदधासि नित्यं
जपार्जनं नैव करोषि मूढ।
आजीविकायै धनसंचयं त्वं
विधेहि मोक्षाय हरिं भजस्व।।210।।

रे मूढ़ ! तू नित्य धन कमाने में लगा रहता है। जप का अर्जन को कभी नहीं करता। तू आजीविका के लिये ही धनसंचय कर किन्तु मोक्ष पाने के लिए तो भगवान का भजन कर।(210)

धनेन साध्या नरलोकयात्रा

जपेन साध्या परलोकयात्रा।

स्वर्गेऽस्ति नारायणनाममुद्रा

न तां दिना काऽपि गतिर्नरस्य।।211।।

मनुष्य लोक की यात्रा तो धन से सिद्ध होती है किन्तु परलोक की यात्रा जप से सिद्ध होती है। स्वर्ग में भगवान नाम का सिक्का ही चलता है। उसके बिना स्वर्ग में मनुष्य की कोई गति नहीं है।(211)

त्वं माधवांशोऽसि निरंजनोऽसि

संसारमायारहितोऽसि वत्स।

तथापि रे जीव ! वृथा बिभेषि

मायाऽस्ति दासी तव माधवस्य।।212।।

वत्स ! तू भगवान का अंश है, निरंजन है और संसार की माया से रहित है। अरे जीव ! तू फिर भी माया से डरता है? यह माया तो तेरे भगवान की दासी है।(212)

मोहोऽस्ति नूनं ममतासहोदरः

स रागमुक्तं न करोति जीवम्।

ये मोहमायाममतारतास्ते

प्रयान्ति नित्यं नरकं नवं नवम्।।213।।

यह मोह निश्चय ही ममता का सहोदर भाई है। यह जीव को राग से मुक्त नहीं करता। अतः जो (लोग) मोह-माया और ममता में रत हैं वे नित्य ही नये-नये नरकों में जाते हैं।(213)

कुर्याद्विधाता धनदं नरं चेत्

एवं विधेयान्नरनाथनाथम्।

तथापि तृष्णा न कदापि जीर्णा

मनुष्यलोके भवतीति सत्यम्।।214।।

विधाता यदि मनुष्य को कुबेर (धनभण्डारी) बना दे अथवा राजाओं का राजा चक्रवर्ती सम्राट बना दे तो भी मनुष्य लोक में (मनुष्य) की तृष्णा सचमुच कभी जीर्ण (शांत) नहीं होती।(214)

गृहं मदीयं धनधान्ययुक्तं

सौम्यानना मे कमनीयकान्ता।

पुत्रादयो मे सुहृदोऽनुकूलाः

तथापि शांतिं लभते न चेतः।।215।।

(शिष्य बोलाः) "मेरा घर धन और धान्य से परिपूर्ण हैं। सौम्य मुखवाली सुन्दर मेरी पत्नी है। मेरे पुत्र, पौत्र आदि एवं बान्धव-मित्र सब मेरे अनुकूल हैं किन्तु फिर भी चित्त शांति नहीं प्राप्त करता है।" (215)

वत्स ! प्रसन्नोऽसि मनुष्यलोके
परन्तु सर्गः क्षणभंगुरोऽयम्।
एषाऽस्ति नूनं जलदस्य छाया
पुनः समायास्यति सूर्यतापः।।216।।

"हे वत्स ! तू इस मनुष्य लोक में प्रसन्न है किन्तु यह संसार क्षण भंगुर है। यह तो बादल की छाया है। इसके तत्काल बाद सूर्य की वह धूप फिर आ जायेगी।(216)

प्रारब्धयोगेन पुरातनेन
प्राप्नोति नूनं नरके निवासम्।
जानाति जीवो न हि मोक्षमार्ग-
मतोऽस्य मुक्तिर्न हि अस्ति सर्गे।।217।।

जीव अपने पुरातन कर्मों के योग से निश्चय ही नरक का निवास प्राप्त करता है। जीव वास्तव में मोक्ष का मार्ग ही नहीं जानता। इसी कारण से संसार में इस जीव की मुक्ति नहीं होती है।(217)

संसारमायां ममतां विहाय
विधेहि योगं परमेश्वरेण।
परेण योगः प्रभुणा वियोगो
अस्यां जगत्यां तव दुःखहेतुः।।218।।

तू संसार की माया और ममता की छोड़कर भगवान से अपना सम्बन्ध स्थापित कर। पराये (लोगों) से योग और प्रभु से वियोग ही इस जगत में तेरे दुःख का कारण है। (218)

रागादिमुक्तं विषयैर्विरक्तं
यावन्मनो नैव भवेन्नरस्य।
तावन्न तरयाऽस्ति भवाद्विमुक्तिः
विषयाय जीवो यतते वृथैव।।219।।

जब तक मनुष्य का मन राग आदि से मुक्त (और) विषयों से विरक्त नहीं होता तब तक इस संसार से मनुष्य की मुक्ति नहीं हो सकती। जीव विषयों के लिए वृथा ही प्रयत्न करता है। (219)

प्राप्ता त्वया सौम्यगुणैरूपेता
कान्ता मनोज्ञा तरुणी सुशीला।
चेतो न लग्नं हरिपादपद्मे
न कोऽपि लाभो नरजीवनस्य।।220।।

तुमने सौम्य गुणों से युक्त, मन को जानने वाली सुशील युवती पत्नी तो प्राप्त करली किन्तु तुम्हारा मन यदि भगवान के चरणकमलों में लगा तो तुम्हारे इस मनुष्य जीवन का कोई लाभ नहीं है।(220)

कामोऽस्ति नूनं भवबन्धनाय
परन्तु रामो भवतारणाय।
विहाय कामं भज मूढ ! रामं
यत्राऽस्ति कामो न हि तत्र रामः।।221।।

रे मूढ़ ! मनुष्य ! इस संसार में यह काम ही जीव के बन्धन का कारण है। परन्तु राम इस संसार सागर से पार करने के लिए है। (इसलिए) तू काम को छोड़कर राम का भजन कर (क्योंकि) जहाँ काम है वहाँ वास्तव में राम नहीं रहते।(221)

विहाय मायां ममतां च मोहं
रामे रतिं यो न करोति यावत्।
तावन्न मोक्षं न भवाद्विमुक्तिं
प्राप्नोति जीवः पुनरेति जन्म।।222।।

यह जीव माया, ममता और मोह को छोड़कर जब तक परमात्मा के साथ राग नहीं करता तब तक वह न तो मोक्ष प्राप्त कर सकता है और न ही इस भवबन्धन से मुक्ति। केवल पुनः जन्म को प्राप्त करता है।(222)

मनुष्यलोकः क्षणभंगुरोऽयं
नात्र चिरं तिरष्ठति कोऽपि जीवः।
सर्वे पदार्था जड़चेतनादयः
नश्यन्ति काले पुनरुद् भवन्ति।।223।।

यह मनुष्य लोग क्षणभंगुर है। कोई भी जीव यहाँ दीर्घकाल तक नहीं रहता। यहाँ संसार के जड़ चेतन सब पदार्थ नष्ट हो जाते हैं और समय पाकर पुनः प्रगट हो जाते हैं।(223)

प्रयाणकाले तव पुत्रपौत्राः
गच्छन्ति सार्धं न धनादयोऽपि।
जीवो वराकः किल रिक्तहस्तः
विहाय सर्वं हि दिवं प्रयाति।।224।।

तेरे प्रयाणकाल में ये पुत्र-पौत्र, धन आदि तेरे साथ नहीं जाते हैं। बेचारा जीव सचमुच सब कुछ छोड़कर खाली हाथ ही देवलोक को प्रयाण करता है।(224)

प्रभुप्रसादेन जहाति माया
मायाविमुक्तो लभते विमुक्तम्।
अतो हि नित्यं भज वासुदेवं

ददाति मोक्षं हरिनाम केवलम्।।225।।

प्रभु की कृपा से माया जीव को छोड़ देती है और माया से मुक्त जीव ही मोक्ष को प्राप्त करता है। इसलिए तू नित्य भगवान वासुदेव का भजन कर क्योंकि केवल हरि का नाम ही जीव को मोक्ष प्रदान करता है।(225)

संतप्रसादो भवतापहारी
कल्याणकारी स परोपकारी।
संतप्रसादं त्वमतो लभस्व
'ऋषिप्रसादो'ऽस्ति संतप्रसादः।।226।।

संत की कृपा संसार के ताप को हरने वाली है। वह कल्याणकारी है और परोपकारी है। इसलिए तुम संत की कृपा को प्राप्त करो। 'ऋषिप्रसाद' ही संत की कृपा है।(226)

पूर्वं तु पूजा स्वगुरोर्विधेया
सर्वेषु देवेषु गुरुर्गरीयान्।
गुरुं विना नश्यति नान्धकारः
भवस्य पारं न नरः प्रयाति।।227।।

सर्वप्रथम अपने गुरुदेव की पूजा करनी चाहिए क्योंकि सारे देवताओं से गुरु अधिक महान् हैं। गुरु के बिना (मनुष्य का अज्ञानरूपी) अन्धकार नष्ट नहीं होता और मनुष्य भवसागर पार नहीं कर सकता।(227)

संप्राप्य मंत्रं गुरुणा प्रदत्तं
यः श्रद्धया तस्य जपं करोति।
प्राप्नोति नित्यं स नरो यथेष्टं
मनोरथास्तस्य भवन्ति पूर्णाः।।228।।

गुरुदेव के द्वारा प्रदत्त गुरुमंत्र को प्राप्त करके जो व्यक्ति श्रद्धा से उस मंत्र का जप करता है, वह सदैव मनचाहा फल प्राप्त कर लेता है और उसके सब मनोरथ पूर्ण जो जाते हैं।(228)

प्रभुं विना नैव गतिर्नराणां
ग्राह्या सदाऽतो प्रभुप्रीतिरेव।
सन्ति जगत्यां गुरवस्त्वनेके
यो ब्रह्मवेत्ता सदगुरुर्विधेयः।।229।।

प्रभु के बिना संसार में मनुष्यों की गति नहीं होती। अतः हमेशा प्रभुप्रीति करनी चाहिए। संसार में गुरु अनेक प्रकार के हैं किन्तु (प्रभुप्रीति जगाने के लिए) जो ब्रह्मवेत्ता हैं उनको ही सदगुरु बनाना चाहिए।(229)

रागादिदोषैर्विषयैर्विरक्तः
यो ब्रह्मविद्यासु विशेषदक्षः।

त्यागी तपस्वी भवतापहारी
परोपकारी गुरुरेव कार्यः।।230।।

जो गुरु राग-द्वेष आदि दोषों से एवं विषयों से विरक्त हैं, ब्रह्मविद्या में विशेष दक्ष यानी कुशल हैं, जो त्यागी, तपस्वी, संसार के ताप को दूर करने वाले और परोपकारी हैं उनको ही गुरु बनाना चाहिए।(230)

सदा सतां भूतहिताय संगः
परं विनाशाय सदा कुसंगः।
देयाद्विधाता नरके निवासं
परं कुसंगं न कदापि देयात्।।231।।

संतों का संग सदैव प्राणिमात्र के हित के लिए होता है परन्तु कुसंग सदा विनाश के लिये होता है। विधाता चाहे नरक में निवास दे दे किन्तु दुर्जन आदमी का संग कभी न देवे। (231)

सुखानुभूतिस्तु मनुष्यलोके
मिथ्या प्रतीतीति वदन्ति संताः।
सत्संगतौ वा हरिकीर्तने वा
नूनं सुखं शेषमशेषदुःखम्।।232।।

संत लोग कहते हैं कि संसार में सुख की अनुभूति मिथ्या प्रतीत होती है। निश्चय ही सत्संगति में अथवा भगवान नारायण के कीर्तन में सुख हैं और शेष सब वस्तुओं में संपूर्ण दुःख है।(232)

संसारमाया न जहाति जीवं
कामोऽपि शत्रुः प्रबलो नरस्य।
अतो हि मुक्तिः सुलभा न लोके
संगः सतां केवलमेक मार्गः।।233।।

संसार की माया जीव को नहीं छोड़ती। काम भी मनुष्य का प्रबल शत्रु है। इसीलिए संसार में जीव की मुक्ति सुलभ नहीं है। संतों का संग ही एकमात्र मार्ग है। (233)

सतां हि संगो भवमोक्षदाता
ददाति मुक्तिं इह शोकमोहात्।
पीयूषधाराऽस्ति सतां हि संगः
तां भाग्यवन्तो हि पिबन्ति लोके।।234।।

संतों का संग भवबन्धन से मुक्ति दिलाने वाला है। वह संसार के शोक-मोह से छुड़ाता है। संतों का संग (सत्संग) वास्तव में अमृत की धारा है, किन्तु संसार में भाग्यवान लोग ही इस सत्संगरूपी अमृत का पान करते हैं।(234)

बापुः समायोगविदां वरा नराः

आयान्ति नित्यं न वसुन्धरायाम्।

लभस्व लाभं समयस्य नोचेत्

वेला न ते हरतगता भविष्यति।।235।।

बापू जैसे योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ पुरुष पृथ्वी पर रोज-रोज नहीं आते हैं। (इसलिये रे मनुष्य !) तू समय रहते इस अवसर का लाभ उठा ले। अन्यथा, फिर से ऐसा मौका हाथ नहीं लगेगा।(235)

संप्रेषितस्तेन जनार्दनेन

नूनं जनोऽयं जनतारणाय।

एवं विधा धर्मधुरंधरा नरा-

श्चिरं न तिष्ठन्ति मनुष्य लोके।।236।।

निश्चय ही परमात्मा ने लोगों का उद्धार करने के लिए इन पुरुष को भेजा है। इस प्रकार के धर्मधुरंधर पुरुष मनुष्य लोक में दीर्घ काल तक नहीं रहते।(236)

गंगा स्वयं ते सदने समागता

तथापि लाभं लभते न मूढ !

स्वात्मप्रसादाय विधेहि यत्न

चन्द्रे गते नैव विभाति राका।।237।।

गंगा तुम्हारे घर में स्वयं आ गई है तो भी रे मूर्ख ! तू उससे लाभ नहीं उठाता ? तू उनसे अपनी आत्मकृपा के लिए यत्न कर। चन्द्रमा के चले जाने पर रात्रि शोभा नही देती।(237)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

श्रीगुरुवन्दना

आसारामं परमसुखदं पूज्यपादं महान्तम्।

सन्तं शान्तं सकलगुणिनं ध्याननिष्ठं वरेण्यम्।

विद्याधारं प्रथितयशसं धर्ममूर्तिं धरायाम्।

वन्दे नित्यं भुवनविदितं प्राणीनां कल्पवृक्षम्।।1।।

धर्मार्थं यः सकलभुवने सत्यमार्गं प्रयाति।

सेवाभावैः शमयति सदा दैन्यदुःखं समेषाम्।

यातो यो नः चरणशरणं तस्य सर्वत्र सौख्यम्।

आसारामो वितरति गुरुर्वन्दनीयो नराणाम्।।2।।

धन्याः सर्वे नगरगृहिणो दर्शनं प्राप्य पुण्यम्।

जाता पूर्णा हृदयलसिता हार्दिकी कामना या।
श्रावं श्रावं विमलमनसा भक्तिगीतं पुनीतम्।
स्मारं स्मारं तव गुणगणं चित्तमग्नाः समे स्वे।।3।।
लोके पुण्यं प्रभवति यदा सर्वथा मानवानाम्।
साधूनां संप्रसरति तदा दर्शनं भाग्यसिद्धम्।
पूर्वपुण्यं प्रकटितमिदं सत्यमेतद् ध्रुवं नः।
ज्ञानालोकं सदयहृदयं त्वां नमामो गुरुं स्वम्।।4।।
कुर्वन्पुण्यं लसति सततं भारतं भारतं स्वम्।
राष्ट्र मान्यं निखिलभुवने धर्मिणामग्रगण्यम्।
यः सन्देशैः सहजदितैर्भावगीतैर्नवीनै-
र्दिव्यर्भव्यैरमृतसदृशैस्तं नुमो ज्ञानगम्यम्।।5।।

परम सुख देने वाले, शांत, सम्पूर्ण गुणों के निधि, ध्याननिष्ठ, श्रेष्ठ विद्या के आधार, प्रसिद्ध कीर्तिवाले, पृथ्वी पर धर्म की साक्षात् मूर्ति, विश्वविख्यात, समस्त प्राणियों के कल्पवृक्ष, पूज्यपाद महान् संत श्री आसारामजी बापू की वन्दना करते हैं।(1)

जो धर्म के प्रचार के लिए सम्पूर्ण विश्व में भ्रमण करते हैं, सेवाभाव से सभी के दुःख एवं दैन्य को सतत दूर करते हैं, जिनके चरण-शरण में आने वाले मनुष्य को सर्वत्र सौख्य प्राप्त होता है, ऐसे पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू सभी मनुष्य के वन्दनीय हैं।(2)

आज हम सभी नगर-गृहवासी आपके पवित्र दर्शन प्राप्त कर धन्य हैं। जो कामना हृदय में चिरलसित थी, वह पूर्ण हो गयी। विमल मन से आपकी भक्ति के पवित्र गीत सुन-सुनकर तथा आपके गुण-समूह को पुनः पुनः स्मरण कर सभी भक्तजन आनन्दमग्न हैं।(3)

संसार में जब मानवों के पूर्व पुण्यों का उदय होता है, तभी भाग्यसिद्ध संतों का दर्शन प्राप्त होता है। आज हमारा पूर्वपुण्य प्रकटित हुआ है यह सर्वथा सत्य है। अतः ज्ञान के प्रकाश, सदयहृदय अपने गुरु पूज्यपाद श्री आसारामजी बापू को हम नमन करते हैं।(4)

नित्य, दिव्य, भव्य एवं नवीन भावपूर्ण उपदेशों से जो भारत राष्ट्र को सम्पूर्ण विश्व में कीर्तियुक्त करते हुए शोभायमान हैं, ऐसे उन धार्मिकों में अग्रमण्य, ज्ञानगम्य संत श्री आसारामजी बापू हैं। हम उनको सतत नमन करते हैं।(5)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ